उनका प्रिय विषय भारतीय चित्रकला व विज्ञान था। अत: उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध चित्रकार व वैज्ञानिकों को प्रेरित किया। वे चित्रकारों को पश्चिमी, नकल करने से रोकती और कहती, रामकृष्ण, बुद्ध, महावीर, शिवाजी, प्रताप का चित्र बनाओ। उनका सर जगदीश चन्द्र बसु से निकट संबंध था और इस महान वैज्ञानिक की उन्होंने अनेक बार आर्थिक सहायता की थी।

वे भारतीय स्त्रियों से अत्यधिक प्रभावित थीं। वे उन्हें लजालु, विनम्र, स्वाभिमानी, सच्चरित्र, सेवाभावी, निष्ठावान और सच्ची मनुष्य दिखाई देती थीं। वे उन्हें शिक्षित तो करना चाहती थीं किन्तु पश्चिम का अन्धानुकरण कर तथा कथित आधुनिक शिक्षा से नहीं जो उनके मूल गुणों को ही नष्ट कर दें। उनके विचार में पश्चिमी शिक्षा से उनके स्वाभाविक विनम्रता व सेवा भाव के स्थान पर अहंकार, सामूहिक गृहस्थ जीवन के स्थान पर व्यक्तिवाद, सरलता व सादगी के स्थान पर फैशन आ जाएगा जो देश को ही समाप्त कर देगा। वे भारत को महान महिलाओं का देश कहा करती थीं। वे भारत की महिलाओं में पत्नी की पवित्रता व पतिव्रता धर्म व माता को नि:स्वार्थ ममता और उसके स्नेहपूर्ण वात्सल्य का गुणगान करतीं वे महिलाओं को लक्ष्मीबाई व अहिल्याबाई के वीरतापूर्ण कार्यों की याद दिलातीं। जिन्होंने अपने जीवन की अन्तिम साँस तक मातृभूमि की सेवा की थी। निवेदता का विश्वास था कि एक बार भारत की स्त्री जाति जाग जाए तो देश पुन: महान हो सकेगा।

वे समस्त समस्याओं, यहाँ तक कि देश की स्वतंत्रता का हल भी भारत की एकता में देखती थीं। विभिन्न जातियों, प्रान्त, भाषा आदि के विभेद उनकी दृष्टि में ऊपरी थे, जो एक सच्चे आह्वान पर समाप्त हो, एक भारत के लिए समर्पित हो सकते थे। उनकी दृष्टि में समस्त नर-नारी भारत माता के विभिन्न अंग हैं जिनमें उत्तर भारत के लोग भुजाएँ दक्षिण भारत के लोग मस्तिष्क व पूर्व के लोग उसका हृदय हैं।

अपने समय के प्रसिद्ध राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक लोगों व कलाकारों से उनका घनिष्ठ परिचय था। अवकाश के दिन प्राय: वे जगदीशचन्द्र बसु के यहाँ चली जातीं, यात्राओं में उनके साथ रहतीं, दार्जिलिंग में अंतिम श्वाँस भी उनके साथ ही छोड़ी। बोस उन्हें उस समय के निराशामय वातावरण में अपना प्रेरणा स्रोत मानते थे। उग्रवादी नेता रासबिहारी बोस, अरविन्द घोष आदि उनके घनिष्ठ थे तो गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्र नाथ पाल, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उनका हृदय से सम्मान करते थे। उनकी लिखी पुस्तकें, उनके भारत-प्रेम, लेखन-कौशल और हृदय-स्पर्शिता के लिए आज भी पठनीय है।

भारत की जलवायु, उनका कठोर संयमी स्वभाव व अनथक परिश्रम उनको अक्सर अस्वस्थ कर देते, पर वे रुकती नहीं थी- सन् 1905 में वे गंभीर बीमार पड़ी किन्तु सन् 1906 में भयंकर दुर्भिक्ष में उन्होंने अनथक परिश्रम व सेवा की। वे भयंकर प्रकार के मलेरिया से ग्रस्त हो गईं किन्तु उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा परन्तु वे पूर्ववत् कभी स्वस्थ नहीं हो पाईं।

सन् 1911 में बोस परिवार के साथ दार्जिलिंग गईं और 13 अक्टूबर को प्रात: भारतमाता की इस महान पुत्री ने उपनिषदों के इस रुद्रस्तवन का निरन्तर पाठ करते हुए अपने प्राण छोड़े-

'असतो मा सद्गमय,

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मा अमृतं गमय।'

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. स्वामी विवेकानन्द से निवेदिता की मुलाकात कब, कहाँ और कैसे हुई ?
2. स्वामीजी के साथ हिमालय यात्रा में निवेदिता को क्या अनुभव हुए ?
3. अमरनाथ यात्रा से भगिनी निवेदिता को भारत को समझने में किस तरह सहायता मिली ?
4. कलकत्ता में फैले प्लेग के समय निवेदिता ने किस प्रकार सेवा की ?
5. स्त्री-शिक्षा पर निवेदिता का विचार स्पष्ट कीजिए।
6. भारतीय स्त्रियों के कौन-कौन से गुणों ने निवेदिता को प्रभावित किया ?

योग्यता विस्तार

1. भारतीय जीवन मूल्य, ज्ञान, दर्शन एवं संस्कृति के लिए समर्पित अन्य महिलाओं के नाम खोजिए और उनकी जीवनी लिखिए।
2. स्वामी विवेकानंद के साहित्य को पुस्तकालय से लेकर पढ़िए।
3. 'मदर टेरेसा' पर एक जीवन वृत्त तैयार कीजिए।
4. स्त्री शिक्षा हेतु किए जा रहे प्रयासों की जानकारी प्राप्त कीजिए तथा अपने विचार लिखिए।

शब्दार्थ

तदुपरान्त = इसके पश्चात्। **अर्जित** = कमाया हुआ। **लक्ष्य** = उद्देश्य। **सान्निध्य** = निकटता। **सुयोग** = अच्छा अवसर। **विस्तीर्ण** = फैला हुआ। **अनथक** = बिना थके हुए। **पूर्ववत्** = पहले की तरह।

निंदा रस

- हरिशंकर परसाई

'क' कई महीने बाद आए थे। सुबह चाय पीकर अखबार देख रहा था कि तूफान की तरह कमरे में घुसे, 'साइक्लोन' की तरह मुझे अपनी भुजाओं में जकड़ा, तो मुझे धृतराष्ट्र की भुजाओं में जकड़े भीम के पुतले की याद आ गई। वह धृतराष्ट्र की ही जकड़ थी। अंधे धृतराष्ट्र ने टटोलते हुए पूछा–''कहाँ है भीम ? आ बेटा तुझे कलेजे से लगा लूँ।'' और जब भीम का पुतला उनकी पकड़ में आ गया, तो उन्होंने प्राण–घाती स्नेह से उसे जकड़–कर चूर–चूर कर डाला।

ऐसे मौके पर हम अक्सर अपने पुतले को अँकवार में दे देते हैं, हम अलग खड़े देखते रहते हैं। 'क' से क्या मैं गले मिला ? क्या मुझे उसने समेट कर कलेजे से लगा लिया ? हरगिज नहीं। मैंने अपना पुतला ही उसे दिया। पुतला इसलिए उसकी भुजाओं में सौंप दिया कि मुझे मालूम था कि मैं धृतराष्ट्र से मिल रहा हूँ। पिछली रात को एक मित्र ने बताया कि 'क' अपनी ससुराल आया है और 'ग' के साथ बैठकर शाम को दो–तीन घंटे तुम्हारी निंदा करता रहा। इस सूचना के बाद जब आज सबेरे वह गले लगा, तो मैंने शरीर से अपने मन को चुपचाप खिसका दिया और निस्नेह, कँटीली देह उसकी बाँहों में छोड़ दी। भावना के अगर काँटे होते, तो उसे मालूम होता कि वह नागफनी को कलेजे से चिपटाए है। छल का धृतराष्ट्र जब आलिंगन करे, तो पुतला ही आगे बढ़ाना चाहिए।

पर वह मेरा दोस्त अभिनय में पूरा है। उसके आँसू भर नहीं आए, बाकी मिलन के हर्षोल्लास के सब चिह्न प्रकट हो गए वह गहरी आत्मीयता की जकड़, नयनों से छलकता वह असीम स्नेह और वह स्नेह–सिक्त वाणी।

बोला, ''अभी सुबह गाड़ी से उतरा और एकदम तुमसे मिलने चला आया, जैसे आत्मा का एक खंड दूसरे खंड से मिलने को आतुर रहता है।'' आते ही झूठ बोला कम्बख्त। कल का आया है, यह मुझे मेरा मित्र बता गया था। इस झूठ में कोई प्रयोजन शायद उसका न रहा हो। कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते हैं। वे आदतन, प्रकृति के वशीभूत झूठ बोलते हैं। उनके मुख से निष्प्रयास, निष्प्रयोजन झूठ ही निकलता है। मेरे एक रिश्तेदार ऐसे हैं। वे अगर बंबई जा रहे हैं और उनसे पूछें, तो वे कहेंगे ''कलकत्ता जा रहा हूँ'' ठीक बात उनके मुँह से निकल ही नहीं सकती। 'क' भी बड़ा निर्दोष, सहज–स्वाभाविक मिथ्यावादी है।

वह बैठा। कब आए ? कैसे हो ? वगैरह के बाद उसने 'ग' की निन्दा आंरभ कर दी। मनुष्य के लिए जो भी कर्म जघन्य है, वे सब 'ग' पर आरोपित करके उसने ऐसे गाढ़े काले तारकोल से उसकी तस्वीर खींची कि मैं यह सोचकर काँप उठा कि ऐसे ही काली तस्वीर मेरी 'ग' के सामने इसने कल शाम को खींची होगी।

सुबह की बातचीत में 'ग' प्रमुख विषय था। फिर तो जिस परिचित की बात निकल आती उसी को चार–छह वाक्यों से धराशायी करके वह बढ़ लेता।

अद्‌भुत है यह मेरा मित्र उसके पास दोषों का केटलाग है। मैंने सोचा कि जब यह हर परिचित की निंदा कर रहा है, तो क्यों न मैं लगे हाथ विरोधियों की गत इसके हाथों करा लूँ। मैं अपने विरोधियों का नाम लेता गया और वह उन्हें निंदा की तलवार से काटता चला। जैसे लकड़ी चीरने की आरा मशीन के नीचे मजदूर लकड़ी का लट्‌ठा खिसकाता जाता है, वैसे ही मैंने विरोधियों के नाम एक–एक खिसकाए और वह उन्हें काटता गया। कैसा आनंद था। दुश्मनों को रणक्षेत्र में एक के बाद एक कटकर गिरते देखकर योद्‌धा को ऐसा ही सुख होता होगा।

मेरे मन में गत रात्रि के उस निन्दक मित्र के प्रति मैल नहीं रहा। दोनों एक हो गए। भेद तो रात्रि के अंधकार में

ही मिटता है। दिन के उजाले में भेद स्पष्ट हो जाते हैं। निंदा का ऐसा ही भेद-नाशक अँधेरा होता है। तीन चार घंटे बाद, जब वह बिदा हुआ, तो हम लोगों के मन में बड़ी शांति और तुष्टि थी।

निंदा की ऐसी ही महिमा है। दो-चार निंदकों को एक जगह बैठकर निंदा में निमग्न देखिए और तुलना कीजिए दो-चार ईश्वर-भक्तों से जो रामधुन लगा रहे हैं। निंदकों की-सी एकाग्रता परस्पर आत्मीयता, निमग्नता भक्तों में दुर्लभ है। इसीलिए संतों ने निंदकों को आँगन कुटी छवाय पास रखने की सलाह दी है।

कुछ मिशनरी निंदक मैंने देखे हैं। उनका किसी से बैर नहीं, द्वेष नहीं। वे किसी का बुरा नहीं सोचते। पर चौबीसों घंटे वे निंदा-कर्म में बहुत पवित्र भाव से लगे रहते हैं। उनकी नितांत निर्लिप्तता, निष्पक्षता इसी से मालूम होती है कि वे प्रसंग आने पर अपने बाप की पगड़ी भी उसी आनंद से उछालते हैं, जिस आनंद से अन्य लोग दुश्मन की। निंदा इनके लिए 'टानिक' होती है।

ट्रेड यूनियन के इस जमाने में निन्दकों के संघ बन गए। संघ के सदस्य जहाँ-तहाँ से खबरें लाते हैं और अपने संघ के प्रधान को सौंपते हैं। यह कच्चा माल हुआ। अब प्रधान उनका पक्का माल बनाएगा और सब सदस्यों को बहुजनहिताय मुफ्त बाँटने के लिए दे देगा। यह फुरसत का काम है, इसीलिए जिनके पास कुछ और करने को नहीं होता, वे इसे बड़ी खुशी से करते हैं। एक दिन हमसे एक ऐसे संघ के अध्यक्ष ने कहा, ''यार आजकल लोग तुम्हारे बारे में बहुत बुरा कहते हैं।'' हमने कहा, आपके बारे में मुझसे कोई भी, बुरा नहीं कहता। लोग जानते हैं कि आपके कानों के घूरे में इस तरह का कचरा मजे में डाला सकता है।

ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दा भी होती है लेकिन इसमें वह मजा नहीं जो मिशनरी भाव से निन्दा करने में आता है। इस प्रकार का निन्दक बड़ा दु:खी होता है। ईर्ष्या-द्वेष के चौबीसों घंटे जलता है और निन्दा का जल छिड़ककर कुछ शांति अनुभव करता है। ऐसा निन्दक बड़ा दयनीय होता है। अपनी अक्षमता से पीड़ित वह बेचारा दूसरे की सक्षमता के चाँद को देखकर सारी रात-श्वान-जैसा भौंकता है। ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निंदा करने वाले को कोई दंड देने की जरूरत नहीं है। वह निन्दक बेचारा स्वयं दंडित होता है। आप चैन से सोइए और वह जलन के कारण सो नहीं पाता! उसे और क्या दंड चाहिए ? निरंतर अच्छे काम करते जाने से उसका दंड भी सख्त होता जाता है। जैसे, एक कवि ने एक अच्छी कविता लिखी; ईर्ष्याग्रस्त निंदक को कष्ट होगा। अब अगर एक और अच्छी लिख दी, तो उसका कष्ट दुगुना हो जाएगा।

निन्दा का उद्गम ही हीनता और कमजोरी से होता है। मनुष्य अपनी हीनता से दबता है। वह दूसरों की निन्दा करके ऐसा अनुभव करता है कि वे सब निकृष्ट हैं और वह उनसे अच्छा है। उसके अहं को इससे तुष्टि होती है। बड़ी लकीर को कुछ मिटाकर छोटी लकीर बड़ी बनती है। ज्यों-ज्यों कर्म क्षीण होता जाता है, त्यों-त्यों निंदा की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। कठिन कर्म ही ईर्ष्या-द्वेष और इनसे उत्पन्न निंदा को मारता है। इंद्र बड़ा ईर्ष्यालु माना जाता है, क्योंकि वह निठल्ला है। स्वर्ग में देवताओं को बिना उगाया अन्न, बे-बनाया महल और बिन-बोए फल मिलते हैं। अकर्मण्यता से उन्हें अप्रतिष्ठित होने का भय बना रहता है। इसलिए कर्मी मनुष्यों से उन्हें ईर्ष्या होती है।

निन्दा कुछ लोगों की पूँजी होती है। बड़ा लंबा-चौड़ा व्यापार फैलाते हैं वे इस पूँजी से। कई लोगों की प्रतिष्ठा ही दूसरों की कलंक-कथाओं के परायण पर आधारित होती है। बड़े रसविभोर होकर वे जिस-तिस की सत्यकल्पित कलंक-कथा सुनाते हैं; और स्वयं को पूर्ण संत समझने की तुष्टि का अनुभव करते हैं।

आप इनके पास बैठिए और सुन लीजिए, 'बड़ा खराब जमाना आ गया । तुमने सुना ? फलाँ और अमुक.....।' अपने चरित्र पर आँख डालकर देखने की उन्हें फुरसत नहीं होती। एक कहानी याद आ रही है। एक स्त्री किसी सहेली के पति की निंदा अपने पति से कर रही थी। वह बड़ा उचक्का, दगाबाज आदमी है। बेईमानी से पैसे कमाता है। कहती

है कि मैं उस सहेली की जगह होती, तो ऐसे पति को त्याग देती। तब उसका पति उसके सामने यह रहस्य खोलता है कि वह स्वयं बेईमानी से इतना पैसा कमाता है। सुनकर स्त्री स्तब्ध रह जाती है। क्या उसने पति को त्याग दिया ? जी हाँ वह दूसरे कमरे में चली गई।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हममें जो करने की क्षमता है, वह यदि कोई करता है, तो हमारे पिलपिले अहं को धक्का लगता है, हममें हीनता और ग्लानि आती है। तब हम उसकी निंदा करके उससे अपने को अच्छा समझकर तुष्ट होते हैं।

उस मित्र की मुलाकात के करीब दस-बारह घंटे बाद यह सब मन में आ रहा है। अब कुछ तटस्थ हो गया हूँ। सुबह जब उसके साथ बैठा था, तब मैं स्वयं निंदा के 'काला सागर' में डूबता-उतराता, कल्लोल कर रहा था। बड़ा रस है न निंदा में। सूरदास ने इसीलिए इसे 'निन्दा सबद रसाल' कहा है।

अभ्यास

1. लेखक ने निन्दकों को पास में रखने की सलाह क्यों दी है?
2. अपने निन्दकों को उचित उत्तर देने का लेखक ने क्या उपाय सुझाया है ?
3. निन्दा की प्रवृत्ति से बचने के लिए क्या करना चाहिए ?
4. ''छल का धृतराष्ट्र जब आलिंगन करे तो पुतला ही आगे बढ़ाना चाहिए'' कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
5. ''कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते हैं।'' कथन की विवेचना कीजिए।
6. इस पाठ से आपने क्या शिक्षा ग्रहण की और क्या निश्चय किया ? स्पष्ट कीजिए।

योग्यता विस्तार

1. मध्यप्रदेश के व्यंग्य लेखकों की सूची तैयार कर उनके व्यंग्य-निबंधों को पढ़िए।
2. क्या आप कभी किसी की निंदा करते हैं, यदि हाँ तो उसे डायरी पर लिखिए और विचार कीजिए कि क्या आप सही करते हैं?
3. 'निंदा' पर अपने विचार निबंध के रूप में लिखिए।

शब्दार्थ

साइक्लोन = चक्रवात बवंडर। **प्राणघाती** = प्राण लेने वाला। **आलिंगन** = गले मिलना। **स्नेह सिक्त**= स्नेह से भरी हुई। **मिथ्यावादी** = झूठा। **जघन्य** = क्रूरतम। **केटलॉग** = क्रमवद्ध सूची। **तुष्टि** = तृप्ति। **एकाग्रता** = ध्यान। **परस्पर** = आपस में। **मिशन** = अभियान। **टानिक** = शक्तिवर्धक औषधि। **श्वान**= कुत्ता। **उद्‌गम** = प्रकट होने का स्थान। **निकृष्ट** = निम्न। **क्षीण** = कमजोर। **प्रवृत्ति** = आदत। **ग्लानि** = क्षोभ।

यक्ष प्रश्न

- संकलित

युधिष्ठिर उसी विषैले तालाब के पास जा पहुँचे, जिसका जल पीकर उनके चारों भाई मृत-से पड़े हुए थे। यह देखकर युधिष्ठिर चौंक पड़े। असह्य शोक के कारण उनकी आँखों से आँसू बह चले।

कुछ देर यों विलाप करने के बाद युधिष्ठिर ने जरा ध्यान से भाइयों के शरीरों को देखा और अपने आपसे कहने लगे – ''यह तो कोई मायाजाल-सा लगता है। आस-पास जमीन पर किसी शत्रु के पाँव के निशान भी तो नजर नहीं आ रहे हैं। हो सकता है कि यह भी दुर्योधन का ही कोई षड्यंत्र हो। संभव है पानी में विष मिला हो।''

सोचते-सोचते युधिष्ठिर भी प्यास से प्रेरित होकर तालाब में उतरने लगे। इतने में वही वाणी सुनाई दी। युधिष्ठिर ने ताड़ लिया कि कोई यक्ष बोल रहा है। उन्होंने बात मान ली और बोले – ''आप प्रश्न कर सकते हैं।''

यक्ष ने कई प्रश्न किए, जिनके उत्तर युधिष्ठिर ने दिए-

प्र. – मनुष्य का साथ कौन देता है ?

उ. – धैर्य ही मनुष्य का साथी होता है।

प्र. – कौन सा शास्त्र (विद्या) है, जिसका अध्ययन करके मनुष्य बुद्धिमान बनता है ?

उ. – कोई भी शास्त्र ऐसा नहीं है। महान लोगों की संगति से ही मनुष्य बुद्धिमान बनता है।

प्र. – भूमि से भारी चीज़ क्या है ?

उ. – संतान को कोख में धारण करने वाली माता भूमि से भी भारी होती है।

प्र. – आकाश से भी ऊँचा कौन है ?

उ. – पिता।

प्र. – हवा से भी तेज़ चलने वाला कौन है ?

उ. – मन।

प्र. – घास से भी तुच्छ कौन सी चीज़ होती है ?

उ. – चिंता।

प्र. – विदेश जाने वाले का कौन साथी होता है ?

उ. – विद्या।

प्र. – घर ही में रहने वाले का कौन साथी होता है ?

उ. – पत्नी।

प्र. – मरणासन्न वृद्ध का मित्र कौन होता है ?

उ. – दान, क्योंकि वही मृत्यु के बाद अकेले चलने वाले जीव के साथ-साथ चलता है।

प्र. – बरतनों में सबसे बड़ा कौन सा है ?

उ. – भूमि ही सबसे बड़ा बरतन है, जिसमें सब कुछ समा सकता है।

प्र. – सुख क्या है ?

उ. – सुख वह चीज़ है, जो शील और सच्चरित्रता पर स्थित है।

प्र. – किसके छूट जाने पर मनुष्य सर्वप्रिय बनता है ?

उ. – अहंभाव के छूट जाने पर।

प्र. – किस चीज़ के खो जाने से दुख नहीं होता है ?

उ. – क्रोध के खो जाने से।

प्र. – किस चीज को गँवाकर मनुष्य धनी बनता है ?

उ. – लालच को।

प्र. – संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है ?

उ. – हर रोज आँखों के सामने कितने ही प्राणियों को मृत्यु के मुँह में जाते देखकर भी बचे हुए प्राणी, जो यह चाहते हैं कि हम अमर रहें, यह महान आश्चर्य की बात है।

इसी प्रकार यक्ष ने कई अन्य प्रश्न भी किए और युधिष्ठिर ने उन सबके ठीक-ठीक उत्तर दिए। अंत में यक्ष बोला ''राजन् ! मैं तुम्हारे मृत भाइयों में से एक को जीवित कर सकता हूँ। तुम जिस किसी को भी चाहो, वह जीवित हो जाएगा।''

युधिष्ठिर ने पलभर सोचा कि किसे जीवित कराऊँ? थोड़ी देर रुककर, बोले – ''मेरा छोटा भाई नकुल जी उठे।''

युधिष्ठिर के इस प्रकार बोलते ही यक्ष ने सामने प्रकट होकर पूछा – ''युधिष्ठिर दस हजार हाथियों के बल वाले भीमसेन को छोड़कर तुमने नकुल को जीवित करवाना क्यों ठीक समझा ?''

युधिष्ठिर ने कहा – ''यक्षराज ! मैने जो नकुल को जीवित करवाना चाहा, वह सिर्फ इसी कारण कि मेरे पिता की दो पत्नियों में से माता कुंती का बचा हुआ एक पुत्र तो मैं हूँ, मैं चाहता हूँ कि माता माद्री का भी एक पुत्र जीवित हो उठे, जिससे हिसाब बराबर हो जाए। अत: आप कृपा करके नकुल को जीवित कर दें।''

''पक्षपात से रहित मेरे प्यारे पुत्र ! तुम्हारे चारों ही भाई जी उठें,'' यक्ष ने वर दिया।

उन्होंने युधिष्ठिर के सद्गुणों से मुग्ध होकर उन्हें छाती से लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए कहा ''बारह बरस के वनवास की अवधि पूरी होने में अब थोड़े ही दिन बाकी रह गए हैं। बारह मास तक तो तुम्हें अज्ञातवास करना है, वह भी सफलता से पूरा हो जाएगा। तुम्हें और तुम्हारे भाइयों को कोई भी नही पहचान सकेगा। तुम अपनी प्रतिज्ञा सफलता के साथ पूरी करोगे।'' इतना कहकर धर्मदेव अंतर्ध्यान हो गए।

वनवास की कठिनाइयाँ पांडवों ने धीरज के साथ झेल लीं। अर्जुन इंद्रदेव से दिव्यास्त्र प्राप्त करके वापस आ गया। भीमसेन ने भी सुगंधित फूलों वाले सरोवर के पास हनुमान से भेंट कर ली थी और उनका आलिंगन प्राप्त करके दस हजार गुना अधिक शक्तिशाली हो गया था। मायावी सरोवर के पास युधिष्ठिर ने स्वयं धर्मदेव के दर्शन किए और उनसे गले मिलने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया था। वनवास की अवधि पूरी होने पर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों की अनुमति लेकर उन्हें और अपने परिवार के अन्य लोगों से कहा कि वे नगर को लौट जाएँ। युधिष्ठिर की बात मानकर सब लोग नगर लौट आए और यह खबर उड़ गई कि पांडव हम लोगों को आधी रात में सोया हुआ छोड़कर न जाने कहाँ चले गए। यह सुनकर लोगों को बड़ा दुख हुआ। इधर पांडव वन में एक एकांत स्थान में बैठकर आगे के कार्यक्रम पर सोच-विचार करने लगे। युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा – ''अर्जुन ! बताओ कि यह तेरहवाँ बरस किस देश में और किस तरह बिताया जाए?''

अर्जुन ने जवाब दिया – ''महाराज ! इसमें संदेह नहीं है कि हम बारह महीने बड़ी सुगमता के साथ इस प्रकार बिता सकेंगे कि जिसमें किसी को भी हमारा असली परिचय प्राप्त न हो सके। अच्छा यही होगा कि हम सब एक साथ ही रहें। कौरवों के देश के आसपास पांचाल, मत्स्य, वैदेह, बाल्हिक दशार्ण, शूरसेन, मगध आदि कितने ही देश हैं। इसमें से आप जिसे पसंद करें, वहीं जाकर रह जाएँगे। यदि मुझसे पूछा जाए, तो मैं कहूँगा कि मत्स्य देश में जाकर रहना ठीक होगा। इस देश के अधीश राजा विराट हैं। विराट नगर बहुत ही सुंदर और समृद्ध है। मेरी तो ऐसी ही राय है। आगे आप जो उचित समझें।''

युधिष्ठिर ने कहा – ''मत्स्याधिपति राजा विराट बड़े शक्ति संपन्न हैं। दुर्योधन की बातों में भी वह आने वाले नहीं हैं। अत: राजा विराट के यहाँ छिपकर रहा जाए।''

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. विषैले तालाब के नजदीक युधिष्ठिर ने क्या देखा ?
2. यक्ष के, संसार के सबसे बड़े आश्चर्य सम्बंधी प्रश्न पर युधिष्ठिर ने क्या उत्तर दिया ?
3. युधिष्ठिर ने नकुल को जीवित करवाने का निश्चय क्यों किया ?
4. यक्ष ने आशीर्वाद देते हुए युधिष्ठिर से क्या कहा ?
5. वनवास की कठिनाइयों के बीच अर्जुन, भीम और युधिष्ठिर ने क्या-क्या प्राप्त किया ?
6. युधिष्ठिर के द्वारा दिए गए उत्तरों की यक्ष पर क्या प्रतिक्रिया हुई ?
7. यक्ष-युधिष्ठिर संवाद से आप को क्या शिक्षा मिलती है ?

योग्यता विस्तार

1. महाभारत कथा को पढ़िए और उसके प्रसंगों पर चर्चा कीजिए।
2. आपकी दृष्टि में यक्ष के द्वारा किए गए प्रश्नों के उत्तर और कुछ भी हो सकते हैं यदि हाँ तो क्या? लिखिए।
3. पाण्डवों के अज्ञातवास के विषय में अधिक जानकारी एकत्रित कीजिए।

शब्दार्थ

विलाप = रोना। **मायाजाल** = जादू। **वाणी** = आवाज। **ताड़ना** = भाँपना। **तुच्छ** = छोटा। **मरणासन्न** = मरने की स्थिति में। **पक्षपात** = भेदभाव। **मुग्ध** = खुश। **धीरज** = धैर्य। **दिव्यास्त्र** = देवताओं से प्राप्त अस्त्र। **सुगमता** = आसानी से। **अधीश** = प्रमुख/स्वामी।

बेटियाँ पावन दुआएँ हैं

- अजहर हाशमी

बेटियाँ, शुभ कामनाएँ हैं।
बेटियाँ पावन दुआएँ है।
बेटियाँ, जीनत हदीसों की।
बेटियाँ, जातक कथाएँ हैं।
बेटियाँ, गुरुग्रंथ की वाणी,
बेटिया, वैदिक ऋचाएँ हैं।
जिनमें खुद भगवान बसता है,
बेटियाँ, वे वंदनाएँ हैं।
त्याग, तप, गुण, धर्म, साहस की
बेटियाँ, गौरव – कथाएँ हैं।
मुस्कुरा के पीर पीती हैं।
बेटियाँ, हर्षित व्यथाएँ हैं।
लू लपट को दूर करती हैं,
बेटियाँ, जल की घटाएँ हैं।
इस प्रदूषण के जमाने में,
बेटियाँ, सुरभित फिजाएँ हैं।
दुर्दिनों के दौर में देखा
बेटियाँ, संवेदनाएँ हैं।

अभ्यास

1. कवि ने बेटियों को गौरव-कथाएँ क्यों कहा है ? स्पष्ट कीजिए।
2. 'जीवन में बेटियों का महत्व' विषय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
3. ''आज के बच्चे कल के नागरिक हैं'' विषय पर दस पंक्तियाँ लिखिए।
4. 'बेटियाँ' कविता का केन्द्रीय भाव स्पष्ट कीजिए।

योग्यता-विस्तार

शब्दार्थ

पावन = पवित्र। **दुआ** = आशीर्वाद। **जीनत** = रौनक, सजावट। **हदीश** = पैगम्बर के उपदेशों का संग्रह। **जातक कथाएँ** = बुद्ध के जन्म सम्बन्धी कथाएँ। **गुरुग्रंथ** = सिक्खों का धर्मग्रन्थ। **साहस** = हिम्मत। **पीर** = पीड़ा। **व्यथा** = दुख। **सुरभित** = सुगंधित। **दुर्दिन** = बुरे दिन। **वैदिक ऋचाएँ** = वेदों के छन्द।

रक्षाबंधन

- विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

'माँ मैं भी राखी बाँधूँगी'

श्रावण की धूम-धाम है। नगरवासी स्त्री-पुरुष बड़े आनन्द तथा उत्साह से श्रावणी का उत्साह मना रहे हैं। बहनें भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखियाँ बाँध रहे हैं। ऐसे ही समय एक छोटे से घर में एक दस वर्ष की बालिका ने अपनी माता से कहा - माँ मैं भी राखी बाँधूँगी।

उत्तर में माता ने एक ठंडी साँस भरी और कहा - किसके बाँधेगी बेटी - आज तेरा भाई होता तो।

माता आगे कुछ न कह सकी । उसका गला रुँध गया और नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए।

अबोध बालिका ने इठलाकर कहा - तो क्या भैया ही के राखी बाँधी जाती है और किसी के नहीं ? भैया नहीं है तो अम्मा मैं तुम्हारे ही राखी बाँधूँगी।

इस दुख के समय भी पुत्री की बात सुनकर माता मुस्कुराने लगी और बोली - अरी तू इतनी बड़ी हो गई - भला कहीं माँ के भी राखी बाँधी जाती है।

बालिका ने कहा - वाह जो पैसा दे उसी के राखी बाँधी जाती है।

माता - अरी पगली ! पैसे पर नहीं-भाई ही के राखी बाँधी जाती है।

बालिका उदास हो गई।

माता घर का काम काज करने लगी। घर के काम शेष करके उसने पुत्री से कहा - आ तुझे निहला (नहला) दूँ।

बालिका - मुख गम्भीर करके बोली - मैं नहीं नहाऊँगी।

माता - क्यों, नहावेगी क्यों नहीं ?

बालिका - मुझे क्या किसी के राखी बाँधनी है ?

माता - अरी राखी नहीं बाँधनी है तो क्या नहावेगी भी नहीं। आज त्योहार का दिन है चल उठ नहा।

बालिका - राखी नहीं बाँधूँगी तो त्योहार काहे का?

माता - (कुछ क्रुद्ध होकर) अरी कुछ सिड़न हो गई है। राखी, राखी रट लगा रक्खी है। बड़ी राखी बाँधने वाली बनी है। ऐसी ही होती तो आज यह दिन देखना पड़ता। पैदा होते ही बाप को खा बैठी। ढाई बरस की होते-होते भाई से घर छुड़ा दिया। तेरे ही कर्मों से सब नास (नाश) हो गया।

बालिका - बड़ी अप्रतिभ हुई और आँखों में आँसू भरे हुए चुपचाप नहाने को उठ खड़ी हुई।

× × ×

एक घण्टा पश्चात हम उसी बालिका को उसके घर के द्वार पर खड़ी देखते हैं। इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है। अब भी उसके बड़े-बडे नेत्रों में पानी छलछला रहा है, परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्यों। जान पड़ता है, वह किसी कार्यवश खड़ी है, क्योंकि उसके द्वार के सामने से जब कोई निकलता है तब वह बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर ताकने लगती है। मानो वह मुख से कुछ कहे बिना केवल इच्छा शक्ति ही से, उस पुरुष का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती थी, परन्तु जब उसे इसमें सफलता नहीं होती तब उसकी उदासी बढ़ जाती है। इसी प्रकार एक, दो, तीन करके कई पुरुष बिना उसकी ओर देखे निकल गए।

अन्त को बालिका निराश होकर घर के भीतर लौट जाने को उद्यत ही हुई थी कि एक सुन्दर युवक की दृष्टि जो कुछ सोचता हुआ धीरे-धीरे जा रहा था, बालिका पर पड़ी। बालिका की आँखें युवक की आँखों से जा लगीं। न जाने उन

उदास तथा करुणापूर्ण नेत्रों में क्या जादू भरा था कि युवक ठिठककर खड़ा हो गया और बड़े ध्यान से सिर से पैर तक देखने लगा। ध्यान से देखने पर युवक को ज्ञात हुआ कि बालिका की आँखें अश्रुपूर्ण हैं। तब वह अधीर हो उठा। निकट जाकर पूछा – बेटी क्यों रोती हो ?

बालिका इसका कुछ उत्तर न दे सकी, परन्तु उसने अपना एक हाथ युवक की ओर बढ़ा दिया। युवक ने देखा, बालिका के हाथ में एक लाल डोरा है। उसने पूछा – यह क्या है? बालिका ने आँखें नीची करके उत्तर दिया – राखी । युवक समझ गया । उसने मुस्कराकर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

बालिका का मुख–कमल–सा खिल उठा। उसने बड़े चाव से युवक के हाथ में राखी बाँध दी।

राखी बँधवा चुकने पर युवक ने जेब में हाथ डाला और दो रुपए निकालकर बालिका को देने लगा, परन्तु बालिका ने उन्हें लेना स्वीकार न किया। बोली – नहीं पैसे दो।

युवक – ये पैसे भी अच्छे हैं।

बालिका – नहीं–मैं पैसे लूँगी, यह नहीं।

युवक – ले लो बिटिया। इसके पैसे मँगा लेना बहुत से मिलेंगे।

बालिका – नहीं, पैसे दो।

युवक ने चार आने पैसे मिलाकर कहा – अच्छा ले पैसे भी ले और यह भी ले।

बालिका – नहीं, खाली पैसे लूँगी।

तुझे दोनों लेने पड़ेगे – यह कहकर युवक ने बलपूर्वक पैसे तथा रुपए बालिका के हाथ पर रख दिए। इतने में घर के भीतर से किसी ने पुकारा – अरी सरसुती (सरस्वती) कहाँ गई ?

बालिका ने – आई–कहकर युवक की ओर कृतज्ञता पूर्ण दृष्टि डाली और चली गई।

॥ 2 ॥

गोलगंज (लखनऊ) की एक बड़ी तथा सुन्दर अट्टालिका के एक सुसज्जित कमरे में एक युवक चिंता–सागर में निमग्न बैठा है। कभी वह ठण्डी साँसे भरता है; कभी रूमाल से आँखे पोंछता है, कभी आप ही आप कहता है – हा! सारा परिश्रम व्यर्थ गया। सारी चेष्टाएँ निष्फल हुईं। क्या करूँ। कहाँ जाऊँ, उन्हें कहाँ ढूँढूँ। सारा उन्नाव छान डाला। परन्तु फिर भी पता न लगा – युवक आगे कुछ और कहने को था कि कमरे का द्वार धीरे–धीरे खुला और एक नौकर अन्दर आया।

युवक ने कुछ विरक्त होकर पूछा – क्यों क्या है ?

नौकर – सरकार अमरनाथ बाबू आए हैं।

युवक – (सँभलकर) अच्छा यहीं भेज दो।

नौकर के चले जाने पर युवक ने रूमाल से आँखें पोंछ डालीं और मुख पर गम्भीरता लाने की चेष्टा करने लगा।

द्वार फिर खुला और एक युवक अन्दर आया।

आओ – भाई अमरनाथ

अमरनाथ – कहो घनश्याम, आज अकेले कैसे बैठे हो ? कानपुर से कब लौटे ?

घनश्याम – कल आया था ।

अमरनाथ – उन्नाव भी अवश्य ही उतरे होगे ?

घनश्याम – (एक ठंडी साँस भरकर) हाँ उतरा था, परन्तु व्यर्थ । वहाँ अब मेरा क्या रखा है।

अमरनाथ – परन्तु करो क्या ? हृदय नहीं मानता है – क्यों ? और सच पूछो तो बात ही ऐसी है। यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता तो मैं भी ऐसा ही करता।

घनश्याम – क्या कहूँ मित्र, मैं तो हार गया। तुम तो जानते ही हो कि मुझे लखनऊ आकर रहे एक वर्ष हो गया और जब से यहाँ आया हूँ उन्हें ढूँढ़ने में कुछ कसर उठा नहीं रक्खी परन्तु सब व्यर्थ।

अमरनाथ – उन्होंने उत्राव न जाने क्यों छोड़ दिया और कब छोड़ा – इसका भी कोई पता नहीं चलता।

घनश्याम – इसका तो पता चल गया न, कि वे लोग मेरे चले जाने के एक वर्ष पश्चात् उन्नाव से चले गए, परन्तु कहाँ गए, यह नहीं मालूम।

अमरनाथ – यह किससे मालूम हुआ ?

घनश्याम – उसी मकान वाले से जिसके मकान में हम लोग रहते थे।

अमरनाथ – हाँ, शोक !

घनश्याम – कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मों का फल है। यदि मैं उन्हें छोड़कर न जाता; यदि गया था तो उनकी खोज खबर लेता रहता, परन्तु मैं तो दक्षिण जाकर रुपया कमाने में इतना व्यस्त रहा कि कभी याद ही न आई। और जो आई भी तो क्षणमात्र के लिए उफ, कोई भी अपने घर को भूल जाता है। मैं ही ऐसा अधम–

अमरनाथ – (बात काटकर) अजी नहीं सब समय की बात है।

घनश्याम – मैं दक्षिण न जाता तो अच्छा था।

अमरनाथ – तुम्हारा दक्षिण जाना तो व्यर्थ नहीं हुआ। यदि न जाते तो इतना धन ....।

घनश्याम – अजी चूल्हे में जाए धन। धन किस काम का । मेरे हृदय में सुख शांति नहीं तो धन किस मर्ज की दवा है।

अमरनाथ – ऐं, यह हाथ में लाल डोरा क्यों बाँधा है?

घनश्याम – इसकी तो बात ही भूल गया। यह राखी है।

अमरनाथ – भाई वाह, अच्छी राखी है। लाल डोरे को राखी बताते हो। यह किसने बाँधी है। किसी बड़े कंजूस ने बाँधी होगी। दुष्ट ने एक पैसा तक खरचना पाप समझा, डोरे ही से काम निकाला।

घनश्याम – संसार में यदि कोई बढ़िया से बढ़िया राखी बन सकती है तो मुझे उससे भी कहीं अधिक प्यारा यह लाल डोरा है। यह कहकर घनश्याम ने उसे खोलकर बड़े यत्नपूर्वक अपने बक्से में रख लिया।

अमरनाथ – भाई, तुम भी विचित्र मनुष्य हो। आखिर यह डोरा बाँधा किसने है?

घनश्याम – एक बालिका ने।

(पाठक समझ गए होंगे घनश्याम कौन है।)

अमरनाथ – बालिका ने कैसे बाँधा और कहाँ?

घनश्याम – कानपुर में।

घनश्याम ने सारी घटना कह सुनाई।

अमरनाथ – यदि यह बात है तो सत्य ही यह डोरा अमूल्य है।

घनश्याम – न जाने क्यों, उस बालिका का ध्यान मेरे मन से नहीं उतरता।

अमरनाथ – उसकी सरलता तथा प्रेम ने तुम्हारे हृदय पर प्रभाव डाला है। भला उसका नाम क्या है।

घनश्याम–नाम तो मुझे नहीं मालूम । भीतर से किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा था, परन्तु मैं सुन न सका।

अमरनाथ–अच्छा, खैर। अब क्या करने का विचार है।

घनश्याम – धैर्य धरकर चुपचाप बैठने के अतिरिक्त और मैं कर ही क्या सकता हूँ। मुझसे जो हो सका, मैं कर चुका।

अमरनाथ – हाँ, यही ठीक भी है। ईश्वर पर छोड़ दो। देखो क्या होता है।

(पूर्वोक्त घटना हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो गए। घनश्यामदास पिछली बातें प्रायः भूल गए हैं, परन्तु उस बालिका की याद कभी–कभी आ जाती है। उसे देखने वे एक बार कानपुर गए भी थे, परन्तु उसका पता न चला। उस घर में पूछने

पर ज्ञात हुआ कि वह वहाँ से, अपनी माता सहित, बहुत दिन हुए, न जाने कहाँ चली गई। इसके पश्चात ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उसका ध्यान भी कम होता गया। पर अब भी जब वे अपना बक्स खोलते हैं तब कोई वस्तु देखकर चौंक पड़ते हैं; और साथ ही कोई पुराना दृश्य भी आँखों के सामने आ जाता है।)

घनश्याम – अभी तक अविवाहित हैं। पहिले तो उन्होंने निश्चय कर लिया था कि विवाह करेंगे ही नहीं। पर मित्रों के और स्वयं अपने अनुभव ने उनका यह विचार बदल दिया। अब वे विवाह करने पर तैयार हैं। पर अभी तक कोई कन्या उनकी रुचि के अनुसार नहीं मिली।

जेठ का महीना है। दिन भर की जला देने वाली धूप के पश्चात सूर्यास्त का समय अत्यंत सुखदाई प्रतीत हो रहा है। इस समय घनश्यामदास अपनी कोठी के बाग में मित्रों सहित बैठ मन्द-मन्द शीतल वायु का आनन्द ले रहे हैं। आपस में हास्यरसपूर्ण बातें हो रही हैं। बातें करते-करते एक मित्र ने कहा – अजी अभी तक अमरनाथ नहीं आए ?

घनश्याम – वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा।

दूसरा – नहीं रम नहीं, वह आजकल तुम्हारे लिए दुल्हन ढूँढ़ने की चिन्ता में रहता है।

घनश्याम – बड़े दिल्लगीबाज हो।

दूसरा – नहीं, दिल्लगी की बात नहीं है।

तीसरा – हाँ, परसों मुझसे यह भी कहता था कि घनश्याम का विवाह हो जाए तो मुझे चैन पड़े।

ये बातें हो ही रही थीं कि अमरनाथ लपकते हुए आ पहुँचे।

घनश्याम – आओ यार, बड़ी उमर – अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी।

अमरनाथ – इस समय बोलिए नहीं, नहीं एकाध को मार बैठूँगा।

दूसरा – जान पड़ता है, कहीं से पिटकर आए हो।

अमरनाथ – तू फिर बोला – क्यों ?

दूसरा – क्यों बोलना किसी के हाथ क्या बेच खाया है ?

अमरनाथ – अच्छा दिल्लगी छोड़ो । एक आवश्यक बात है।

सब उत्सुक होकर बोले – कहो कहो, क्या बात है ?

अमरनाथ (घनश्याम से) तुम्हारे लिए दुल्हन ढूँढ़ ली है।

सब – (एक स्वर से) फिर क्या, तुम्हारी चाँदी है।

अमरनाथ – फिर वही दिल्लगी । यार तुम लोग अजीब आदमी हो।

तीसरा – अच्छा बताओ, कहाँ ढूँढ़ी है।

अमरनाथ – यहीं, लखनऊ में।

दूसरा – लड़की का पिता क्या करता है ?

अमनाथ – पिता तो स्वर्गवास करता है।

तीसरा – यह बुरी बात है।

अमरनाथ – लड़की है और उसकी माँ बस, तीसरा कोई नहीं। विवाह में कुछ मिलेगा भी नहीं। लड़की की माता बड़ी गरीब है।

दूसरा–यह उससे भी बुरी बात है।

तीसरा – उल्लू मर गए, पट्ठे छोड़ गए। घर भी ढूँढा तो गरीब । कहाँ हमारे घनश्याम इतने धनाढ्य और कहाँ ससुराल इतनी दरिद्र? लोग क्या कहेंगे ?

अमरनाथ – अरे भाई, कहने और न कहने वाले हमी तुम हैं और यहाँ उनका कौन बैठा है जो कहेगा।

घनश्यामदास ने एक ठण्डी साँस ली।

तीसरा – आपने क्या भलाई देखी जो यह सम्बन्ध करना विचारा है।

अमरनाथ – लड़की की भलाई । लड़की लक्ष्मी–रूपा है। जैसी सुन्दर वैसी ही सरल । ऐसी लड़की यदि दीपक लेकर ढूँढी जाए तो भी कदाचित् ही मिले।

दूसरा – हाँ, यह अवश्य एक बात है।

अमरनाथ – परन्तु लड़की की माता लड़का देखकर विवाह करने को कहती है।

तीसरा – यह तो व्यवहार की बात है।

घनश्याम – और, मैं लड़की देखकर विवाह करूँगा।

दूसरा – यह भी ठीक ही है।

अमरनाथ – तो इसके लिए क्या विचार है ?

तीसरा – विचार क्या, लड़की देखेंगे।

अमरनाथ – तो कब ?

घनश्याम – कल।

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लड़की देखने चले। गाड़ी चक्कर खाती हुई यहियागंज की एक गली के सामने जा खड़ी हुई। गाड़ी से उतरकर दोनों मित्र गली में घुसे। लगभग सौ कदम चलकर अमरनाथ एक छोटे से मकान के सामने खड़े हो गए और मकान का द्वार खटखटाया।

घनश्याम बाले – मकान देखने से तो बड़े गरीब जान पड़ते हैं।

अमरनाथ – हाँ, बात तो ऐसी ही है, परन्तु यदि लड़की तुम्हारे पसन्द आ जाए तो यह सब सहन किया जा सकता है।

इतने में द्वार खुला और दोनों भीतर गए। संध्या हो जाने के कारण मकान में अँधेरा हो गया था। अतएव ये लोग द्वार खोलने वाले को स्पष्ट न देख सके।

एक दालान में पहुँचने पर दोनों चारपाइयों पर बिठा दिए गए और बिठाने वाली ने जो स्त्री थी, कहा – मैं जरा दिया जला लूँ।

अमरनाथ – हाँ, जला लो।

स्त्री ने दीपक जलाया और पास ही एक दीवार पर उसे रख दिया, फिर इनकी ओर मुख करके वह नीचे चटाई पर बैठ गई, परन्तु ज्यों ही उसने घनश्याम पर अपनी दृष्टि डाली – एक हृदयभेदी आह उसके मुख से निकली – और वह ज्ञानशून्य होकर गिर पड़ी।

स्त्री की ओर कुछ अँधेरा था इस कारण उन लोगों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पड़ता था। घनश्याम उसे उठाने को उठा, परन्तु ज्यों ही उन्होंने उसका सिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी त्योंही घनश्याम के मुख से निकला – मेरी माता और वे उठकर भूमि पर बैठ गए।

अमरनाथ विस्मित हो काष्ठवत् बैठे रहे अन्त को कुछ क्षण उपरान्त बोले – उफ, ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है। जिनके लिए तुमने न जाने कहाँ की ठोंकरें खाईं वे अन्त को इस प्रकार मिले।

घनश्याम अपने को सँभालकर बोले – थोड़ा पानी मँगाओं।

अमरनाथ – किससे मँगाऊँ। यहाँ तो कोई और दिखाई ही नही पड़ता, परन्तु हाँ वह लड़की तुम्हारी कहते अमरनाथ रुक गए। फिर उन्होंने पुकारा; बिटिया थोड़ा पानी दे जावो ! परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा – बेटी तुम्हारी माँ अचेत हो गई हैं। थोड़ा पानी दे जाओ।

इस 'अचेत' शब्द में न जाने क्या बात थी कि तुरन्त ही घर की दूसरी ओर बरतन खड़कने का शब्द हुआ। तत्पश्चात् एक पूर्ण वयस्का लड़की लोटा लिए आई।

लड़की मुँह कुछ ढके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता की आँखें तथा मुख धो दिया। थोड़ी देर में उसे होश आया। उसने आँखे खोलते ही फिर घनश्याम को देखा। तब वह शीघ्रता से उठकर बैठ गई और बोली – ऐं, मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ ? घनश्याम क्या तू मेरा खोया हुआ घनश्याम है? या कोई और ?

माता ने – पुत्र को उठाकर छाती से लगा लिया और अश्रुबिन्दु विसर्जन किए ! परन्तु वे बिन्दु सुख के थे अथवा दुख के कौन कहे ?

लड़की ने यह सब देख सुनकर अपना मुँह खोल दिया और भैया–भैया करती हुई घनश्याम से लिपट गई। घनश्याम ने देखा – लड़की कोई और नहीं वही बालिका है जिसने पाँच वर्ष पूर्व उनके राखी बाँधी थी और जिसकी याद प्राय: उन्हें आया करती थी।

× × ×

श्रावण का महीना है और श्रावणी का महोत्सव। घनश्यामदास की कोठी खूब सजाई गई है। घनश्याम अपने कमरे में बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे हैं। इतने में एक दासी ने आकर कहा – बाबू भीतर चलो। घनश्याम भीतर गए। माता ने उन्हें एक आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उसके तिलक लगाकर राखी बाँधी। घनश्याम ने दो अशर्फियाँ उसके हाथ में धर दीं और मुस्कुराकर बोले – क्या पैसे भी देने होंगे?

सरस्वती ने हँसकर कहा – नहीं भैया, ये अशर्फियाँ पैसों से अच्छी हैं। इनसे बहुत से पैसे आवेंगे।

अभ्यास

1. घनश्याम ने अपनी माता और बहिन की खोज कहाँ–कहाँ की ?
2. नाटकीय ढंग से हुए माँ–बेटे और बहिन के मिलन के दृश्य का वर्णन कीजिए।
3. ''अमरनाथ एक सच्चा मित्र है।'' क्यों कहा गया है ?
4. ''यह सब मेरे ही कर्मों का फल है'' घनश्याम के इस कथन के आलोक में माँ–बेटे के बिछुड़ने की घटना का वर्णन कीजिए।
5. प्रस्तुत कहानी के माध्यम से कहानीकार क्या सन्देश देना चाहता है ?

योग्यता विस्तार

1. 'रक्षाबंधन' त्योहार से जुड़े अन्य प्रसंगों के सम्बन्ध में तुमने और कौन–कौन सी कहानियाँ पढ़ी अथवा सुनी हैं, उन्हें सूचीबद्ध करिए।
2. रक्षाबंधन की तरह दीपावली, होली, क्रिसमस, ईद आदि त्योहार की कहानियाँ खोजिए।
3. इस कहानी का क्या और भी कुछ अंत हो सकता था? लिखिए।

शब्दार्थ

अप्रतिम = अद्वितीय। **विद्यमान** = उपस्थित। **चेष्टा** = प्रयत्न। **उद्यत** = तत्पर। **अधीर** = बेचैन। **कृतज्ञता** = आभार। **विरक्त** = वैराग्य। **पूर्वोक्त** = पहले की। **दृश्य** = चित्र। **प्रतीत** = अनुभव। **धनाढ्य** = अमीर **दरिद्र** = गरीब। **हृदयभेदी** = हृदय में चुभने वाली। **विस्मित** = आश्चर्यचकित। **काष्ठवत्** = निर्जीव खिलौने की तरह। **अचेत** = मूर्च्छित/बेहोश। **अशर्फी** = सोने का सिक्का।

दीपक की आत्मकथा

- संकलित

वर्तमान युग ज्ञान – विज्ञान का युग है, ऐसे में यदि एक दीपक भी पढ़ने–पढ़ाने की बात करता है, तो इसमें आश्चर्य क्या ? फिर पढ़ने–पढ़ाने का संबंध ज्ञान के प्रकाश से है और मुझ दीपक का संबंध अंधकार के प्रकाश से है। ज्ञान अंतर के अंधकार का हरण करता है; तो मैं बाह्य अंधकार को दूर करता हूँ। फलत: हम दोनों ही सहकर्मी, सहधर्मी तो हैं ही, आपस में भाई–भाई भी हैं। अत: इसी आकर्षण के वशीभूत होकर आज सुबह–सुबह मैंने 'दैनिक समाचार पत्र' पर दृष्टि डाली तो एक शीर्षक पर नज़र पड़ते ही मन बल्लियों उछल पड़ा, लिखा था – 'दीपक की आत्मकथा' अर्थात् मेरी अपनी आत्मकथा। शीर्षक पढ़ते ही खो गया मैं अपने जन्म की स्मृति में –

कुछ ही दिनों पूर्व की बात है; उस दिन सूर्योदय काल था, जगत्–साक्षी भगवान भास्कर की अरुणिम किरणें अभी धरा का स्पर्श कर ही रहीं थीं। मैं भी माटी के समष्टि स्वरूप में गौरवशालिनी धरा का अंश बना अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहा था, साथ ही तत्पर था, प्रथम रवि–अंशु के हार्दिक स्वागत में। उसी समय एक कुम्हार परिवार के सदस्य वहाँ आकर उपस्थित हुए और बिना कुछ सोचे–बिचारे बड़ी निर्ममता से कुदाली से खोद–खोद कर उन्होंने मुझे और मेरे अन्य बन्धु–बान्धवों को धरा के अंग से अलग कर दिया। हम पोर–पोर बिखर गए; हमारा अस्तित्व भूमि से मिट्टी मात्र हो गया। मैं रुआँसा हो गया, कातर दृष्टि से माता पृथ्वी की ओर देखने लगा। माँ की मूक दृष्टि ने मानो मुझसे कहा – ''रोओ मत, संघर्ष का क्षण है; धैर्य रखो, ... जाओ, विधाता कुम्हार के माध्यम से तुमसे कोई बड़ा कार्य कराना चाहते हैं । बेटा ! ईश्वर किसी महान कार्य के लिए जिसका चयन करते हैं, उसी के समक्ष चुनौती भी उपस्थित करते हैं। चुनौती को वीरता के साथ स्वीकार करना ही महानता प्राप्त करने का प्रथम गुण है; क्योंकि वीरता ही लक्ष्य का वरण करती है।'' माँ के इन गम्भीर, सारपूर्ण एवं आदेशात्मक स्वर को सुनकर मैं मन मारकर रह गया, किन्तु माँ के ये स्वर बार–बार मेरे मन मस्तिष्क में गूँज रहे थे। ''..... महान कार्य के लिए चयन करते हैं ..... चुनौती उपस्थित करते हैं। चुनौती को वीरता के साथ स्वीकार करना ..... महानता ..... प्रथम गुण ..... क्योंकि वीरता ही लक्ष्य का वरण करती है।'' ..... मुझे प्रतीत हो रहा था कि एक तरफ कानों में गुंजन हो रहा था और दूसरी तरफ मेरे हृदय में विचारों का महा–तत्व दृढ़ता प्राप्त कर रहा था। बान्धवों सहित टोकरियों में भर लिया और सिर पर रखकर घर की ओर चल दिए। टोकरी में पड़ा और सिर पर चढ़ा मैं सोचता रहा – पहले तो कुदाली के प्रहार से क्षत–विक्षत कर दिया, फिर सिर पर चढ़ा लिया, किन्तु दूसरे ही क्षण सोचा यह भी विधाता का कोई नियम होगा अथवा मेरी सहनशक्ति का प्रतिफल; मुझे याद आया– मेरी माँ धरती भी तो कितना कुछ सहन करती है, इसीलिए तो वह स्वर्ग से भी महान है।

कुछ ही समय के पश्चात एक छोटे से घर के समक्ष मुझे जोर से पटक दिया गया; उस आघात से मेरा पूरा शरीर झनझना उठा। मैं अभी सँभल भी नहीं पाया था कि कुम्हार के बच्चे मुझे जोर–जोर से कूटने लगे, मुझमें से खोज–खोजकर कंकर अलग करने लगे। कुम्हार वहीं थोड़ी दूर पर बैठा। बीच–बीच में बच्चों को निर्देशित कर रहा था। कुछ ही देर में कुम्हार की पत्नी एक गागर में पानी भर लाई और मुझ (कुटी मिट्टी) में मिलाने लगी। पानी पाकर कुटाई की पीड़ा अभी कम भी नहीं हुई थी कि कुम्हार ने मुझे पैरों से रौंदना प्रारम्भ कर दिया। उसके पैरों की रौंद इतनी तीव्र थी कि मेरे तो डर के मारे हाथ–पैर ही फूल गए। कुम्हार ने जब मुझे पूरी तरह फूला और गुँथा हुआ जान लिया तब उसने बड़े लौंदे का रूप दिया, फिर मुझे घूमते हुए चाक पर रख दिया। चाक की तीव्र गति भी कम भय त्रासक नहीं थी। कुम्हार ने दोनों हाथों के

सहारे मुझे गोल, लम्बा और ऊपर से नुकीला बना दिया। इसके पश्चात् ऊपर की नुकीली, गीली थोड़ी सी मिट्टी को अपनी अँगुलियों के सहारे चाक पर आकार देना प्रारम्भ किया। मैं हतप्रभ था, उसकी कुशल कलाकारी ने मुझे दीप का स्वरूप दिया और एक मोटे से मजबूत धागे से काटकर चाक से अलग कर दिया। उस क्षण मैं अपने नवीन स्वरूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सारे आघात, सारी पीड़ा विस्मृत सी हो गई। उस क्षण मुझे इस तथ्य का साक्षात दर्शन हुआ कि पीड़ा से ही सृजन का जन्म होता है।

कई दिनों तक मुझे कड़ी धूप में सुखाया गया। मैंने सूर्य के उस दाहक-स्वरूप को सहन किया या फिर यह कहूँ कि रवि के उस प्रखर तेज को धारण करके मैंने अपने अन्दर के कच्चेपन को दूर किया। मेरी समझ में सूर्य की सत्संगति से मैं मजबूत हो गया था; किन्तु कुम्हार को संतुष्टि कहाँ? उसने मुझे पुनः आग की भट्टी में पकने के लिए डाल दिया।

मित्रो । भट्ठी की तीव्र दाहकता का वर्णन क्या करूँ? देखने वाले तो क्या सुनने वालों के भी दिल दहल जाएँ। मुझे कुम्हार पर बहुत क्रोध आ रहा था; किन्तु मेरा वह क्रोध उस क्षण श्रद्धा में बदल गया जब आवा ठण्डा हुआ और कुम्हार ने मुझे बड़े स्नेह और उल्लास से बाहर निकाला। बाहर आकर खुले आकाश और ठंडी हवा के सम्पर्क से मुझे शीतलता की अनुभूति हुई। उसी समय मैंने देखा – मेरा जो सहोदर आवे में कुछ किनारे पर था, जिसने अग्नि की दाहकता का सामना नहीं किया था, वह कमजोर था। आवे से निकालते समय ही वह एक जरा से धक्के से टूट गया था अब मैं मजबूत था। मैंने जीवन के अनेक थापों और तापों को सहा था, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, अपने आत्मबल को मजबूत करने के लिए कुम्हार मुझे रंग रहा था और मैं कुम्हार में गुरुता के दर्शन कर रहा था। बगल में बैठा कुम्हार का पुत्र एक दोहा गा रहा था । मुझे सुनाई दे रहा था।

''गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट ॥''

कुम्हार प्रसन्न हो रहा था; क्योंकि समय के थपेड़ों को सहकर भी कठिन संघर्षों का सामना करके भी मैंने चुनौती को स्वीकार किया था। अपने आपको 'सच्चा दीप' सिद्ध किया था।

मैंने स्वयं बिककर कुम्हार को गुरुदक्षिणा प्रदान की और एक सुन्दर से घर में प्रवेश किया। अरे, यह क्या ? लक्ष्य प्राप्ति के हर्ष को कुछ क्षण भी भली प्रकार अनुभव नहीं कर पाया था कि मुझे गलने के लिए पानी में डाल दिया गया, फिर सुखाया गया । मुझमें तेल भरकर बाती डाली गई। मंत्रोच्चारण सहित अक्षत, रोली, चन्दन और पुष्प से पूजा करके मुझे प्रज्ज्वलित किया गया। मैं 'दीप' से 'दीपक' बनकर जीवन की पूर्णता प्राप्त कर रहा था, हरण कर रहा था – उस तमस् का, जो पसरा हुआ था माता धरित्री के सीने पर। फैला रहा था प्रकाश चारों दिशाओं में । मूक नमन कर रहा था उन पंचतत्वों को जिनके योग से साकार रूप धारण किया था, मेरे भौतिक शरीर ने। मूक नमन कर रहा था, कृतज्ञ भाव से पुनः अपनी माँ भूमि को अपनी मातृभूमि को।

माँ पृथ्वी मुझे आशीष प्रदान कर रहीं थीं; अपनी कुक्षि की धन्यता की अनुभूति के साथ।

इस गहरी भावानुभूति से बाहर निकल जब मैं सचेतनता को प्राप्त हुआ तो पाया –

घर के मुखिया अपने बच्चों को मेरा उदाहरण देकर शिक्षा दे रहे थे – ''देखो बच्चो ! जिस प्रकार यह नन्हा सा दीप स्वयं जलकर भी दूसरों को प्रकाश देने में ही अपना जीवन अर्पित कर देता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य को भी जीवन के संघर्षों से घबराए बिना अपने आत्मबल को विकसित करके समाज और राष्ट्र के हित में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए। यही मानव जीवन की सार्थकता है, क्योंकि त्याग के सुख का आनन्द अनिर्वचनीय होता है, अतुलनीय होता है।''

इस प्रकार मुखिया अपने बच्चों को समझा रहे थे और मैं सुन रहा था, संतुष्ट और प्रसन्न हो रहा था – अपने जीवन की सार्थकता पर, मिट्टी से 'दीप' और दीप से 'दीपक' तक की यात्रा पर।

सच है, जो काल की मार को सहते हैं, कुटते, गलते और तपते हैं, संघर्षों की भट्ठी में पकते हैं, वे ही अपने उस त्याग और तप के बल पर महानता धारण करते हैं और प्राप्त करते हैं–जीवन की सार्थकता।

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. ज्ञान और दीपक के आपसी संबंध को स्पष्ट कीजिए।
2. जीवन में आने वाले संघर्षों और चुनौतियों को विकास का मार्ग क्यों कहा गया है ?
3. दीपक से मानव-जीवन की तुलना किस रूप में की गई है ?
4. ''दीपक की आत्मकथा'' नामक पाठ से आपको क्या प्रेरणा मिलती है ?
5. दीपक ने किस-किस को नमन किया और क्यों ?
6. माता की कुक्षि कब धन्यता प्राप्त करती है ?
7. दीप ने अपने आपको 'सच्चा दीप' कैसे सिद्ध किया ?
8. मानव-जीवन को सार्थकता कैसे प्राप्त होती है ?
9. ''गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है..... बाहर मारे चोट।'' इन पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए ?

योग्यता विस्तार

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर 'पुस्तक की आत्मकथा' लिखिए।
2. मिट्टी से बनाए जाने वाली वस्तुओं की सूची बनाइए तथा मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य स्वयं जाकर देखिए।
3. आत्मकथा और जीवनी के अंतर को शिक्षक से समझकर, उसे लिपिबद्ध करिए।

शब्दार्थ

आलोकित = प्रकाशित। **यत्र-तत्र** = यहाँ=वहाँ। **सर्वत्र** = सभी जगह। **सहकर्मी** = साथ काम करने वाला। **अरुणिम** = लाल। **समष्टि** = सम्पूर्ण। **निर्ममता** = कठोरता। **हतप्रभ** = आमंत्रित। **आघात** = चोट। **विस्मृत** = भूल जाना। **सृजन** = निर्माण। **दाहक** = जलाने वाला। **अक्षत** = चावल के खड़े दाने। **तमस** = अंधकार। **आवा** = मिट्टी के बर्तनों को आग में तपाने की भट्टी। **अनिर्वचनीय** = जिसे शब्दों में व्यक्त न किया जा सके। **अतुलनीय** = जिसकी तुलना न की जा सके। **काल** = समय।